4

भारत में समाज कार्य परम्परा और शिक्षा का विकास

* उमा

प्रस्तावना

यथेष्ट सन्दर्भ के पश्चात् ही समाज कार्य, इसके दर्शन, मूल्यों एवं सिद्धान्तों के क्रमबद्ध विश्लेषण को समझा जा सकता है तथा इस बात का प्रयास किया गया है कि भारतवर्ष में समाज कार्य की अवधारणा एवं इसके विकास को समझा जाए। इसके अंतर्गत इसकी अभिवृद्धि एवं विकास से संबंधित विभिन्न पर्यवेक्षण तथा विचार सम्मिलित है।

समाज कार्य व्यवसाय प्राथमिक रूप से समाज के सीमान्त वर्गों की अभिरुचियों के साथ घनिष्ठता रखता है। ऐसे व्यक्तियों के मौलिक मानव अधिकारों का अक्सर उल्लंघन होता है जिनके पास आर्थिक, भौतिक, मानसिक, सामाजिक और अथवा संवेगात्मक संसाधनों की कमी होती है। संसाधनों की कमी व्यक्तियों को शक्तिहीन बनाती है तथा उन्हें सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक व्यवस्थाओं में सीमान्त की ओर ले जाती है। सीमांत व्यक्ति संसाधनों पर नियन्त्रण रखने वाले व्यक्तियों के संसाधनों से वंचित रहने एवं शोषण का शिकार होते हैं। इस प्रकार से, समाज कार्य व्यवसाय इस बात की मान्यता देता है कि सीमान्त व्यक्तियों के सशक्तीकरण की आवश्यकता है जिससे कि वे स्वयं अपने विकास एवं कल्याण के लिए निर्णायक भूमिका निभा सकें। सशक्तीकरण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने स्वयं पर तथा संसाधनों पर नियन्त्रण प्राप्त करता ह जा शाक्त का निर्धारण करते हैं। इस प्रक्रिया का उद्देश्य है व्यवस्था संबंधी शक्तियों की प्रकृति एवं दिशा में सुधार लाना जो कि शक्तिहीन व्यक्तियों को सीमान्त की स्थिति में ले जाती है।

यह व्यवसाय दशाओं को अच्छा बनाने के लिए क्रमबद्ध एवं संगठित प्रयासों पर बल देता है तथा व्यक्ति, समूहों एवं समुदाय का उनके सामाजिक एवं आर्थिक वातावरण से समायोजन को सुगम बनाता है। यह कल्याण दृष्टिकोण एवं मूल्य व्यवस्था समस्त मानव क्रियाओं में न्याय एवं समानता के मौलिक परिप्रेक्ष्य पर आधारित है। अतः यह समीचीन होगा कि भारतीय समाज के सिद्धान्त के रूप में इस मूल्य व्यवस्था तथा इसकी मान्यता की उत्पत्ति के समझा जाए।

* उमा, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

भारत में समाज कार्य और समाज सेवा परम्परा का विकास

समाज सुधार एवं समाज कार्य की शुरूआत को उन्नीसवीं सदी, विशेषकर राजा राम मोहन राय के समय से खोजा जा सकता है। इसके पहले की अवधि का कोई सन्दर्भ कुछ मुसलमान अथवा मराठा शासकों की सुधार क्रियाओं का वर्णन करता है। फिर भी, प्राचीन भारत में समाज कल्याण क्रियाओं का संदिग्ध सन्दर्भ देखने को मिलता है जोकि अधिकतर पूर्व समय की प्रशंसा के रूप में है। प्राचीन समय के विषय के परिदृश्य को तीन कालखण्डों में विभाजित किया जा सकता है। ये काल खण्ड है 2500 बी0सी0 से 1000 ई. प्राचीन काल, 1100 ई. अथवा 1200 ई. से 1800 ई. तक माध्यमिक काल तथा 1800 ई. के उपरान्त आधुनिक काल के रूपों में।

इस भाग में प्राचीन काल पर विशेष ध्यान दिया गया है जोकि अनुमानतः आठ सदी एडी अतः बृहत कार्य में अथवा संभवतः उसके कुछ समय पहले की समयावधि है। यह ध्यान में रखने वाली बात है कि यह समयावधि लगभग तीन हजार वर्षों की है जिसमें विशेषकर सामाजिक संरचना के बारे में ऐतिहासिक प्रमाण मिलते है, अतः वृहत् कार्य में जिस कालानुसार दृष्टिकोण को अपनाया गया है, उसका उद्देश्य समाज कल्याण अवधारणा के विकास की दिशा तथा झलक को प्रस्तुत करना है।

प्राचीन काल में समाज सुधार

प्राचीन काल में दान एवं धर्मनिष्ठा भारतीय संस्कृति की मुख्य बातें रही हैं। सभी व्यक्तियों का कल्याण एवं सामान्य भलाई करना अथवा इसके लिए पहल करना मुख्य विशेषता रही है, जिसकी झलक पौराणिक कथाओं एवं गाथाओं–स्मृतियों अथवा धर्मशास्त्रों में देखी जा सकती है। पहले वर्णित दान को ऋग्वेद से प्राप्त किया जा सकता है जो दान देने के लिए यह कहते हुए प्रेरित करता है कि " जो व्यक्ति देता है वह सबसे अधिक चमकता है"। कौटिल्य के नाम से जुड़ा हुआ 'अर्थशास्त्र' राजनीति के क्षेत्र में एक प्राचीनतम कार्य है जोकि इस बात को कहता है कि सार्वजनिक भलाई के लिए ग्रामीणों द्वारा संयुक्त रूप से निर्माण कार्य किया जाना चाहिए। यह इस बात का भी वर्णन करता है कि समाज कार्य ऐसे बच्चों, वृद्धों अथवा अशक्तों के संरक्षण के रूप में है जिनका संरक्षक कोई नहीं है। शहरों में रहने वाले व्यक्तियों के लिए सामान्य भलाई हेतु विशेष नियम स्थापित किए गए। सामूहिक दान समाज कार्य का लोकप्रिय स्वरूप था जिसमें से शिक्षा की प्रगति अथवा विद्यादान महत्वपूर्ण था जोकि अनेकों 'जटकास' प्रतिविम्बित करते हैं। अन्य उपनिषद् जैसे 'वृहदाण्डकारण्या, 'चान्डोग्या' एवं 'तैत्रीया' इस बात को कहते हैं कि प्रत्येक निवासी (व्यक्ति) को दान देना चाहिए।

शिक्षा के पश्चात्, धर्म का सन्दर्भ दिया जा सकता है, जोकि प्राचीन भारत के व्यक्तियों के लिए प्रत्येक वस्तु से ऊपर समझा जाता था। इसलिए सामाजिक क्रियाओं को सम्पन्न करने का एक लोकप्रिय ढंग 'यज्ञ' था। यज्ञों का प्रमुख उद्देश्य व्यक्तिगत लाभ अथवा लाभ से हटकर सभी का सामान्य कल्याण करना था। बहुत सी यज्ञशालायें थी जिसमें विद्यार्थियों को कक्षा कक्ष के रूप में अहम पर केन्द्रित इच्छाओं से परे रखते हुए उनमें धीरे–धीरे कार्य करने की भावना को विकसित किया जाता था। यह सीख एवं उत्साह घर, कार्यस्थल तथा साधारण सामुदायिक जीवन में जाता था। समुदाय को एक अस्तित्व के रूप में आगे बढ़ने एवं प्रगति प्राप्त करने हेतु प्रेरित किया जाता था। सुविधायुक्त वर्गों को चाहिए कि वे गरीबों, बाधितों एवं सुविधावंचित व्यक्तियों को सेवा करने के अपने कर्तव्य का निर्वहन करें। (गीता)

वैदिक समय के प्रारम्भिक काल की समुदाय आधारित संरचना एक विस्त त परिवार के रूप में कार्य करती थी जहाँ प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। क्रियाओं की इस साधारण प्रकृति एवं संबंधों के कारण सामुदायिक कल्याण से प्रत्येक व्यक्ति संबद्ध था। कृषि आधारित समाज के धीरे–धीरे विकसित होने के साथ, भूमि एवं दान के निजी स्वामित्व की परम्परा स्थापित हुई। भिक्षा देना अथवा दान सुविधायुक्त व्यक्तियों द्वारा स्वैच्छिक रूप से दिया जाने वाला संयंत्र बन गया। वैदिक काल के बाद की अवधि में भिक्षा देना संस्थागत हो गया तथा धार्मिक विचारधारा इससे संबद्ध हो गयी। यह एक प्रिय गुण के रूप में प्रशंसित किया जाता था।

बुद्धवाद के उदय ने समाज के चरित्र को वर्ग आधारित कृभाक समाज के रूप में परिवर्तित कर दिया। इसके दर्शन द्वारा वर्ग अन्तरों को स्पष्ट करने का प्रयास किया तथा पुण्य एव दान (भिक्षा देना) पर बल दिया गया। दान (भिक्षा देना) सीमान्तजनों की दशाओं में सुधार लाने का केवल एक साधन नहीं था परन्तु 'संघ' को भेंट देने के रूप में था जोकि आश्रय एवं ज्ञान के केन्द्र थे। संघों का महत्वपूर्ण संयुक्त निकाय के रूप मे उदय हुआ जिनको इस अवधि में राजनैतिक एवं आर्थिक कार्य दिए गए थे। ये समाज के दबे हुए वर्गों को सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध कराते थे तथा इनके कोषों का कुछ भाग नेत्रहीनों, निराश्रित व्यक्तियों, अशक्तों, दुर्बलों, अनाथों एवं विधवाओं की सहायता में उपयोग किया जाता था।

मगध राज्यों में नई राजनीतिक व्यवस्था की स्थापना के साथ, प्रशासकीय व्यवस्था की स्थापना हेतु प्रारम्भिक प्रयास किए गए। सामान्य कल्याण, सड़कों के निर्माण, कृषि इत्यादि पर ध्यान दिया गया। कौटिल्य द्वारा अपनी प्रजा के कल्याण एवं खुशहाली के लिए राजा के कर्तव्यों का वर्णन किया गया। अशोक तथा बाद में कनिष्क की राज्यावधि में इसी प्रकार की समाज कल्याण क्रियाओं की पहल की गई जिनमें महिलाओं का कल्याण, कैदियों का

पुनर्वासन, ग्रामीण विकास, शुल्क विहीन चिकित्सकीय इलाज, वेश्यावृत्ति का नियमन, जन सुविधा सेवाओं का प्रावधान इत्यादि सम्मिलित थी।

मध्यकाल (1206–1706) में समाज सुधार

मध्य काल में समाज सुधार क्रियाओं को वर्णित करने में जिस दृष्टिकोण का अनुगमन किया गया वह राजाओं पर व्यक्तिगत रूप से तथा उनकी प्राप्तियों पर केन्द्रीय नहीं था बल्कि सामाजिक संस्थाओं एवं संरचना के परिवर्तनों में उनके योगदान की मात्रा पर केन्द्रित थी। मुसलमान सल्तनत, जोकि मध्य काल के महत्वपूर्ण समय का निर्माण करती हैं, धर्म एवं शिक्षा के क्षेत्रों में सामाजिक सेवा के इसी उत्साह से प्रेरित एवं कार्यरत थी। जीते हुए क्षेत्र की व्यावहारिक आवश्यकताओं को एक करने तथा विदेश में कुशल प्रशासन उपलब्ध कराने ने राजाओं की भूमिका तथा कार्यों के वर्णन को आवश्यक कर दिया। इन कर्तव्यों में शान्ति बनाए रखना, बाहरी शक्तियों से संरक्षण, करों को लगाना तथा प्रजा को न्याय दिलाना सम्मिलित थें। इन सीमित लौकिक कार्यों के अतिरिक्त, शासकों ने जनता के सामान्य कल्याण की अभिवृद्धि में बहुत कम अभिरुचि दिखाई। धर्म मुसलमानों को 'जकात' के माध्यम से सुविधावंचित व्यक्तियों की सहायता करने से जोड़ता है। 'जकात' धन, पशु, अनाज, फल एवं व्यापारी माल, नाम पांच वस्तुओं की वार्षिक विधिक भिक्षा है। पीने के पानी की व्यवस्था, मस्जिदों का निर्माण, सरायों का प्रावधान करने, गरीबों को दान देने का पवित्र कार्य के रूप में समझे जाते थे।

मुसलमान शासकों में हुमाँयू सबसे अग्रणी शासक था जिसने सती प्रथा को रोकने का प्रयास किया। अकबर एक प्रख्यात शासक था जिसने 1583 में दासता को समाप्त कर भारतीय समाज में सुधार लाने की पहल की। उसने वर्ग एवं धर्म पर ध्यान दिये बिना व्यक्तियों के मध्य समानता को स्थापित किया एवं गरीबों की सहायता के लिए एक विस्तृत व्यवस्था की स्थापना की जोकि दो प्रकार थी : प्रत्येक आवश्यकतागस्त व्यक्ति को नकद वस्तु के रूप में सहायता देना जो इसके लिए प्रार्थना करता है तथा अन्य व्यवस्था थी क्रमबद्ध एवं संगठित रूप से नियमित सहायता देना।

आधुनिक काल (1800 if. से लेकर) में समाज सुधार

इस अवधि में भारतीय समाज राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में कई प्रमुख परिवर्तनों से धीरे–धीरे गुजरा। पश्चिमी सभ्यता पर आधारित सम्पत्ति के अधिकारों की विधिक व्यवस्था, कानून का शासन, न्यायपालिका एवं बाजार अर्थ व्यवस्था का अभ्युदय, रेलवे तथा संचार व्यवस्था, तथा नवीन शैक्षणिक व्यवस्था जिसने स्वतन्त्रता, न्याय एवं समानता के आदर्शों की अर्न्तदृष्टि को खोला, ऐसे कुछ प्रमुख परिवर्तन थें जिनकी गूंज पूरी

संरचना में प्रतिध्वनित हुई। इन परिवर्तनों ने परिवार, नातेदारी, विवाह एवं जाति को प्रभावित किया। इसने पश्चिमी उदार विवेक पूर्ण अर्न्तदृष्टि वाले एक अभिजात्य वर्ग की अभिवृद्धि को प्रभावित किया तथा इसमें मदद की जिसने उन्नीसवी सदी के दौरान समाज सुधार आन्दोलन को आगे बढ़ाया।

समाज सुधार आन्दोलन की शुरूआत राम मोहन राय के कार्य में देखी जा सकती है जिन्होंने धार्मिक एवं सामाजिक सुधारों के बीज बोए। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, ज्योतिरावफूले, सशीपदा बनर्जी, गोपाल कृष्ण गोखले, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, बाल शास्त्री जाम्बेकर जैसे अनेक सुधारक थे जिन्होंने लगभग एक शताब्दी तक देश के विभिन्न भागों में भारतीय समाज की कुछ बातों जैसे जाति व्यवस्था, बाल विवाह, सती, वैधव्य, मूर्तिपूजा इत्यादि में सुधार लाने पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। न्याय, समानता एवं स्वतंत्रता के आदर्श इन सुधार आन्दोलनों के अन्तर्गत निहित सिद्धान्त थे। इनमें से कई व्यक्तियों को सहायता उपलब्ध कराने हेतु विद्यालयों एवं संस्थाओं की स्थापना की। इन सामाजिक व्यवहारों का उन्मूलन करने के लिए विधान बनाने हेतु सरकारों को प्रेरित करने के लिए शिक्षा तथा प्रचार करने को अपने प्रहार का आधार बनाया। इस आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले कुछ संगठन हैं ब्रह्म समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी, रामकृष्ण मिशन, इण्डियन सोशल कान्फ्रेन्स, सर्वेन्ट्स ऑफ इण्डिया सोसाइटी इत्यादि।

फिर भी, यह समाज सुधार आन्दोलन अधिकांशतः आंग्लभाषा भाषी मध्यम वर्ग से युक्त जनता के एक लघु अभिजात्य वर्ग तक ही सीमित रहा। परन्तु गाँधी जी के आने पर, सम्पूर्ण समाज सुधार एवं राजनैतिक स्वतंत्रता आन्दोलन में परिवर्तन हुआ। विशेषीकृत रूप से, गांधी जी ने राजनैतिक आन्दोलन को सामाजिक आन्दोलन से जोड़ा तथा जनसंख्या के सभी वर्गों विशेषकर महिलाओं एवं कृषि से जुड़े कामगारों तथा निम्नजातियों की सहभागिता के साथ इसको जन आन्दोलन में बदला।

1936 में बम्बई शहर में समाज कार्य व्यवसाय के प्रशिक्षण एवं शिक्षण के प्रारम्भ करने में सर दोराबजी टाटा ग्रेजुएट स्कूल ऑफ सोशलवर्क नामक पहले समाज कार्य के स्कूल की स्थापना उल्लेखनीय है। इसके पश्चात्, देश के कई भागों में समाज कार्य के अनेक संस्थान स्थापित किए गए।

स्वतंत्रता के पश्चात् सरकार ने कल्याण दृष्टिकोण की तरफ अपना झुकाव किया तथा अपने परिप्रेक्ष्य के अंतर्गत समाज कार्य के कई क्षेत्र समाहित किए। सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक विकास, संस्थात्मक परिवर्तन के विचारों तथा परिवार नियोजन, व्यक्तियों की गरीबी का उन्मूलन तथा जनसंख्या के मध्य आय के अन्तरों को कम करने के कार्यक्रमों

की लोकप्रियता लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु प्रयास करने तथा इस दिशा में कार्य करने के लिए सामाजिक अभिमुखीकरण की दिशा को प्रदर्शित करते हैं।

गाँधीवादी विचारधारा और सर्वोदय आन्दोलन

भारतवर्ष में समाज कार्य के इतिहास एवं विकास पर कोई चर्चा महात्मा गाँधी के योगदान के वर्णन किए बिना पूर्ण नहीं होगी क्योंकि वे एक समाज सुधारक, तथा महत्वपूर्ण धर्मयोद्धा थे। उन्होंने राजनैतिक एवं समाज सुधार के एकीकरण का उदाहरण प्रस्तुत किया एवं इस बात की वकालत की कि देश को केवल विदेशी दासता से ही मुक्त नहीं होना चाहिए बल्कि यह वास्तविक रूप से तभी विकसित होगा जबकि इस प्रक्रिया में सामाजिक बुराइयाँ बाधक नहीं बनेगी।

गाँधी जी के परिदृश्य में आने पर समाज सुधार आन्दोलन में परिवर्तन हुए। प्रथम, समाज सुधार क्रियायें, सामाजिक एवं राजनैतिक आन्दोलन के एक महत्वपूर्ण भाग के रूप में राजनैतिक स्वतंत्रता हेतु आन्दोलन से सम्बद्ध की गयी। द्वितीय, यह महिलाओं एवं कृषि में लगे कामगारों एवं हरिजन जैसी निम्न जातियों की सहभागिता से जन आन्दोलन बन गया। तृतीय, जनमत जागृत करने तथा सरकारी नीतियों को प्रभावित करने वाले पूर्व के ढंगों के अतिरिक्त नए सामाजिक आर्थिक आन्दोलन ने व्यक्तियों को अपने स्वयं अथवा सामूहिक प्रयास द्वारा प्रत्यक्ष कार्रवाई करने के लिए प्रेरित किया। अन्य शब्दों में, धरना देने, व्यक्तिगत रूप से सत्याग्रह करने, असहयोग करने एवं कुछ स्थितियों में मृत्यु पर्यन्त भूख हड़ताल पर भी जाने जैसे कार्यों को करने के लिए व्यक्तियों द्वारा सामाजिक क्रिया करने पर बल दिया गया।

इसी समय एक विभिन्न प्रकार का समाज कल्याण का प्रतिरूप (माडल) अचानक लागू किया गया। यह उस समय की देश की सामाजिक दशाओं एवं समाज सुधार तथा समाज कल्याण की राष्ट्रीय विरासत से पूर्ण रूपेण मेल नहीं खाता था। यह श्रम के विभाजन की बढ़ती हुई जटिलता, सामाजिक विभेदीकरण, एवं कार्य के विशेषीकरण द्वारा विशेषीकृत एक औद्योगिक नागरिक समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक प्रतिरूप (माडल) था। यह सुधारवादी, व्यक्तिवादी एवं सामाजिक परिवर्तन की अपेक्षा सामाजिक नियन्त्रण की प्रक्रियाओं से अधिक जुड़ा हुआ था। व्यावसायिक कार्यकर्ताओं का उदीयमान समूह उस समय सामने आए समाज कल्याण के स्वदेशी प्रतिरूप (माडल) से अपने आप को जोड़ नहीं सके। अपनी यथार्थता की चाह में उनका झुकाव पूर्व गांधीवादी समाज सुधार की ओर हो गया। पश्चिमी शिक्षण व्यवस्था की उत्पत्ति होने तथा अधिकांशतः नए शहरी मध्यम वर्ग के

ढंगों के अतिरिक्त नए सामाजिक आर्थिक आन्दोलन ने व्यक्तियों को अपने स्वयं अथवा सामूहिक प्रयास द्वारा प्रत्यक्ष कार्रवाई करने के लिए प्रेरित किया। अन्य शब्दों में, धरना देने, व्यक्तिगत रूप से सत्याग्रह करने, असहयोग करने एवं कुछ स्थितियों में मृत्यु पर्यन्त भूख हड़ताल पर भी जाने जैसे कार्यों को करने के लिए व्यक्तियों द्वारा सामाजिक क्रिया करने पर बल दिया गया।

इसी समय एक विभिन्न प्रकार का समाज कल्याण का प्रतिरूप (माडल) अचानक लागू किया गया। यह उस समय की देश की सामाजिक दशाओं एवं समाज सुधार तथा समाज कल्याण की राष्ट्रीय विरासत से पूर्ण रूपेण मेल नहीं खाता था। यह श्रम के विभाजन की बढ़ती हुई जटिलता, सामाजिक विभेदीकरण, एवं कार्य के विशेषीकरण द्वारा विशेषीकृत एक औद्योगिक नागरिक समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एक प्रतिरूप (माडल) था। यह सुधारवादी, व्यक्तिवादी एवं सामाजिक परिवर्तन की अपेक्षा सामाजिक नियन्त्रण की प्रक्रियाओं से अधिक जुड़ा हुआ था। व्यावसायिक कार्यकर्ताओं का उदीयमान समूह उस समय सामने आए समाज कल्याण के स्वदेशी प्रतिरूप (माडल) से अपने आप को जोड़ नहीं सके। अपनी यथार्थता की चाह में उनका झुकाव पूर्व गांधीवादी समाज सुधार की ओर हो गया। पश्चिमी शिक्षण व्यवस्था की उत्पत्ति होने तथा अधिकांशतः नए शहरी मध्यम वर्ग के होने के कारण उन्होंने गाँधी एवं उत्तरगाँधी सर्वोदय समूह की अपेक्षा पूर्व गाँधीवादियों से अपने को अधिक निकट पाया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति से, गाँधी जी की मूल्य व्यवस्था ने भारत की सरकार की सामाजिक नीति को मोड़ दिया। उनके प्रयास संविधान को अंगीकृत करने में परिलक्षित होते हैं जिसमें अन्तःकरण, पूजा, बोलने, प्रकटन की स्वतंत्रता की गारण्टी दी गई है तथा धर्म, कुल, जाति अथवा लिंग के आधार पर विभेदीकरण करने को मना किया गया है, देश को राजनैतिक एवं प्रशासकीय दृष्टि से एकीकृत किया गया है, समाज कल्याण की समस्याओं पर संकेन्द्रित करते हुए कल्याणकारी राज्य की ओर प्रगति की गई है तथा इनसे संबंधित मुद्दों के गहन परीक्षण की व्यवस्था की गई है।

सर्वोदय एवं समाज कल्याण

गाँधी जी ने समाज कल्याण की अवधारणा सर्वोदय के रूप में प्रस्तुत की जिसका अर्थ, "जीवन के समस्त क्षेत्रों में सबकी भलाई", उसी समय उन्होंने सबसे निम्न वर्ग, दीन एवं सुविधा वंचितों जैसे हरिजनों, महिलाओं, निराश्रितों, गाँववासियों इत्यादि के कल्याण पर विशेष बल दिया। उनका रचनात्मक कार्यक्रम केवल सभी व्यक्तियों की भलाई पर ही बल नहीं देता था बल्कि व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्रीय जीवन के समस्त पहलुओं से संबंधित था।

महात्मा गाँधी ने जब समाज सुधार के मुद्दे की वकालत की तथा अपने को सामाजिक बुराइयों के उन्मूलन से संबद्ध किया तो अप्रत्यक्ष रूप से उनकी क्रिया की विशेष योजनाएं सामने आयीं। उन्होंने अर्न्तसामूहिक संबंधों को बढ़ावा दिया, अनुकूल जनमत तैयार किया, जन कार्यक्रमों को चलाया तथा जन स्तर पर परिवर्तनों को लागू किया। गाँधी जी के दर्शन का आधार व्यक्ति के सम्मान एवं महत्ता पर आधारित था। उन्होंने श्रम के महत्व तथा प्रत्येक व्यक्ति के जीवनयापन करने के अधिकार में विश्वास किया। उन्होंने अपने विचार दूसरे व्यक्तियों पर नहीं थोपे लेकिन उनके प्रति समझ एवं प्यार प्रदर्शित किया।

सर्वोदय का मुख्य आधार 'स्वराज' एवं 'लोकनीति' के मूल्यों पर बल देना है जिसका अर्थ है समानता एवं न्याय प्राप्त करने के लिए व्यक्तियों को स्वयं अपने को शासित करना चाहिए। इस दर्शन ने यह स्वीकार किया कि व्यक्ति को अपनी स्थिति तथा उसे आवश्यक संसाधन उपलब्ध होने पर वह इनका प्रबन्ध करने के विषय में ज्ञानवान होता है। इसने यह स्वीकार किया कि व्यक्ति को अपने स्वयं के भाग्य के विषय में योजना बनाने का तथा जीवनशैली निर्धारण का अधिकार है एवं इस बात को ठीक माना कि स्थानीय समाधान स्थानीय संसाधन की वास्तविकताओं के अनुरूप होने चाहिए।

सर्वोदय समूह सामाजिक पुर्ननिर्माण में विश्वास करता है जो ग्रामीण क्षेत्रों में उनकी रचनात्मक क्रियाओं का लक्ष्य था। उनका उद्देश्य एक समतापूर्वक समाज की स्थापना था जो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण से मुक्त था। उनके कार्य करने का केन्द्र निराश्रितता से ग्रसित व्यक्तियों का समूह न होकर ग्रामीण समुदाय थे। उनका प्रमुख उद्देश्य अस्पृश्यता के अभ्यास जैसी सामाजिक समस्याओं को हल करना था जो तभी संभव है जब शोषण पर आधारित सामाजिक, व्यवस्था का मौलिक रूप से पुनर्निमाण किया जाए।

इस दृष्टि से देखने पर यह कहना गलत नहीं होगा कि गाँधी जी तथा सर्वोदय ने भारतवर्ष में समाज कार्य व्यवसाय को प्रतिस्थापित करने के लिए पर्याप्त पृष्ठभूमि तैयार की। उन्होंने ऐसे मूल्यों का सृजन किया जोकि व्यावसायिक समाज कार्य के अभ्यासों, लक्ष्यों, दर्शन एवं ढंगों के अनुरूप हैं। फिर भी गाँधी जी की अवधारणा, प्राथमिकतायें एवं प्राविधियाँ विशेष रूप से व्यावसायिक सामाजिक कार्यकर्ताओं से भिन्न थी क्योंकि समाज कार्य की उनकी योजना में ग्रामीण समाज एवं इसकी समस्याओं पर अधिक प्रकाश डाला गया। समाज कार्य केवल उन्नति करने वाला एवं सुधारात्मक ही नहीं है बल्कि समतामूलक समाज की स्थापना हेतु सामाजिक संरचना के पुनर्निमाण से भी संबंधित है। उन्होंने शहरी समाज पर अधिक ध्यान नहीं दिया।

समाज कार्य के व्यवसाय की प्रविधियों के संबंध में योगदान देने के अतिरिक्त उन्होंने समाज के दो लक्ष्यों—समाज सुधार एवं वैयक्तिक समायोजन को एक दूसरे के साथ सम्बद्ध किया। समाज कार्य के मूल्य मौलिक रूप से दोहरे है: एक तरफ समाज कार्य समाज सुधार में अभिरुचि रखता है तथा दूसरी तरफ अपनी वर्तमान परिस्थितियों के साथ व्यक्ति के समायोजन में सहायता करता है। इस प्रकार से गाँधी जी ने भारतवर्ष में व्यावसायिक समाज कार्य की अभिवृद्धि हेतु बौद्धिक वातावरण के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

स्वैच्छिक और व्यावसायिक समाज कार्य के बीच समान आधार

स्वैच्छिक समाज कार्य को सदैव वैयक्तिक एवं सामूहिक साधनों के माध्यम से "दरिद्रता के लिए सहायता" अथवा समाज के सुविधावन्चित एवं सीमान्त वर्गों के लिए सहायता उपलब्ध कराने के रूप मे समझा जाता है। विपत्ति से ग्रस्त व्यक्तियों को दान, सहानुभूति, लोकोपाकरक भावना एवं आध्यात्मिक इच्छा से सहायता पहुँचाने से संबंधित होने के कारण स्वैच्छिक समाज कार्य मूल्यों मे एक उच्च मूल्य समझा जाता है। यह कुछ अथवा बिना किसी व्यक्तिगत बढ़ोत्तरी, लाभ, इज्जत अथवा राजनैतिक लाभ के समर्पण की वास्तविक भावना से कार्य करने को उल्लिखित करता है।

वास्तविक रूप से स्वैच्छिक समाज कार्य भारतवर्ष में बहुत पुरातन काल से चली आ रही परम्परा है। जैसा कि परम्परागत समुदाय आधारित समाज में सामान्य है कि दान, लोकोपकार, सहयोग के गुणों एवं गरीबों के प्रति दातव्य प्रबन्धों की सदैव प्रशंसा की जाती है। समाज के दबे हुए व्यक्तियों के प्रति दयालुता हिन्दू संस्कृति का महत्वपूर्ण स्तम्भ रहा है। यह स्वैच्छिक सेवा अवैतनिक अथवा बिना भुगतान के सेवा का पर्यायवाची है एवं इस प्रकार भुगतान प्राप्त कार्यकर्ता वह आदर नही पाता है एवं व्यावसायिक समाज कार्यकर्ता को कम आदर प्राप्त होता है। यद्यपि वर्तमान सन्दर्भ में "स्वैच्छिक" शब्द समस्त संगठित समाज कार्य को सम्मिलित करता है चाहे वह भुगतान पा रहा हो अथवा न पा रहा हो, सरकारी प्रबन्धन के अन्तर्गत कार्यरत है अथवा गैर सरकारी संस्थाओं में कार्यरत हो। फिर भी, स्वैच्छिक समाज कार्य भारतीय समाज में अभी भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

यह तथ्य कि समाज कार्य/कल्याण का इतिहास सभ्यता के जन्म से ही अस्तित्व में है, को इस बात से प्रमाणित किया जा सकता है कि प्रारम्भिक अवस्था मे खतरे के समय कमजोर व्यक्तियों को सहायता एवं संरक्षण के लिए अन्य व्यक्तियों द्वारा पहल एवं प्रयास किए जाते थें। इसके अतिरिक्त, खतरे के समय वृद्ध एवं कमजोर सदस्यों को ग्राम पंचायतो, सयुक्त परिवार एवं समुदाय द्वारा उपलब्ध संरक्षण एक सामाजिक बीमा के रूप

में देखा जा सकता था। व्यक्ति की सामान्य लोकोपकारक चाह के अतिरिक्त, धर्म ने भी आवश्यकताग्रस्त एवं सुविधावन्चित व्यक्तियों को सहायता उपलब्ध कराने की व्यवस्था द्वारा स्वैच्छिक समाज कार्य को सुगम बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। क्रिश्चियन मिशीनरियों ने भी इस प्रवृत्ति को बढ़ाने में तथा सेवा के क्षेत्रों में कार्य करने पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। धार्मिक उत्साह से प्रभावित स्वैच्छिक समाज कार्य बीसवीं शताब्दी में प्रवेश किया एवं सर्वेन्ट्स ऑफ इण्डिया सोसाइटी का जन्म हुआ। शीघ्र ही, राजनैतिक परिदृश्य पर महात्मा गाँधी के आने पर समाज कार्य दर्शन तथा विकासात्मक क्रियाओं को नया उत्साह मिला। उनके विचार समाज की कुछ बुराइयों में सुधार लाने के लिए विभिन्न रचनात्मक परियोजनाओं के रूप में सामने आए। स्वतंत्रता के पश्चात् सरकार ने स्वयं समाजकार्य के क्षेत्र में प्रवेश किया। इसका यह अर्थ नहीं है कि पूर्ववर्ती सरकार की कोई सामाजिक सेवायें नहीं थी, परन्तु 'कल्याणकारी राज्य' के आदर्श की प्राप्ति की ओर झुकाव हुआ। समाजवादी व्यवस्था पर आधारित समाज की स्वीकृति यह परिणाम हुआ कि सरकार ने अपने परिप्रेक्ष्य के अंतर्गत और समाज कार्य के क्षेत्रों को ले लिया। इसका यह अर्थ है कि यह पूर्ण रूप से समाज कार्य नहीं है परन्तु सरकार द्वारा कुछ समाज सेवाओं का प्रबन्धन एवं प्रशासन करना है जो कि साधारण स्थिति में स्वैच्छिक समाज कार्य के क्षेत्र होते।

औद्योगिक समाजों की बदलती हुई मांगों के प्रत्युत्तर में इस अवधारणा एवं स्पष्टीकरण का विस्तार हुआ तथा इसमें महत्वपूर्ण परिवर्तन भी हुए। यह आवश्यकताग्रस्त व्यक्तियों को केवल सहायता एवं सेवाओं को उपलब्ध कराने के प्रयास तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि अपने विशेषीकृत वातावरण के साथ व्यक्ति, समूहों एवं समुदाय के सामन्जस्य को आसान बनाने के लिए सहायता एवं सहायता देने वाली सेवाओं को उपलब्ध कराने के लिए एक संगठित एवं क्रमबद्ध क्रिया के रूप में विकसित हुई।

सामाजिक वास्तविकताओं का यह परिवर्तन समाज सुधार आन्दोलनों की परिपूर्णता के साथ क्रमबद्ध तरीके से कल्याणक्रियाओं को सामने लाया। इसने एकीकृत कुशलताओं एवं ज्ञान को प्रदान करने की आवश्यकता को जन्म दिया ताकि सामाजिक विकास के उद्देश्यों को अच्छे ढंग से पूर्ति करने हेतु क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिए सक्षम एवं बचनबद्ध मानवशक्ति का विकास हो सके। इस प्रकार, प्रशिक्षण की आवश्यकता थी जिससे कि भारतीय समाज को प्रभावित करने वाले जटिल मुद्दों से निपटा जाए तथा इनका उत्तर प्राप्त किया जाए। यद्यपि स्वैच्छिक एवं व्यावसायिक कार्यकर्ताओं, दोनों का मानवतावादी दृष्टिकोण एक तरह का होता है, जो उनको आपस में अलग करती है, वह है, व्यावसायिक वैज्ञानिक प्रशिक्षण। फिर भी, स्वैच्छिक एवं व्यावसायिक समाज कार्य में कम अन्तर है, यह

अन्तर प्रविधि एवं सेवा देने के ढंग के रूप में होता है। इस बात पर अधिक संकेन्द्रण बढ़ रहा है कि विकासशील कार्यक्रमों के प्रबन्धन की प्रभाव पूर्णता के लिए किस प्रकार से राज्य संस्थाओं एवं स्वैच्छिक क्षेत्र में आपस में संबंध स्थापित कर जोड़ा जाए।

भारत में समाज कार्य शिक्षा

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अनुसार समाज कार्य में पहला प्रशिक्षण पाठ्यक्रम (सोशलवर्क एजूकेशन इन इण्डियन यूनीवर्सिटीज, 1965) बम्बई में सोशल सांइस लीग द्वारा 1920 में चलाया गया। यह कल्याण कार्य में लगे हुए स्वैच्छिक कार्यकर्ताओं के लिए कम समय का पाठ्यक्रम था। समाज कार्य में जीवनवृत्त के लिए प्रशिक्षण उपलब्ध कराने की दृष्टि से बम्बई में पहली व्यावसायिक संस्था 1936 में स्थापित की गई। भारतवर्ष में समाजकार्य शिक्षा की उत्पत्ति की जड़े **सर दोराबजी टाटा गेजुएट स्कूल ऑफ सोशल वर्क** (टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल साइन्सेज के नाम में परिवर्तित) की स्थापना में है। इसमें मुख्य रूप से स्नातकों (कुछ समय कुछ पूर्व स्नाततक भी) की भर्ती की जाती थी एवं प्रशिक्षण के दो वर्ष के पाठ्यक्रम के उपरान्त डिप्लोमा इन सोशल सर्विस ऐडमिनिस्ट्रेशन प्रदान किया जाता था। 1942 तक, संस्थान ने प्रत्येक एक वर्ष छोड़कर विद्यार्थियों की भर्ती की। इसने विश्वविद्यालय से सम्बद्धता नहीं प्राप्त की क्योंकि संस्थान के प्रबन्धन का विचार था कि इससे इस प्रयोग की स्वतंत्रता में कमी आएगी। फिर भी, टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल साइन्सेज को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम की धारा 3 के अंतर्गत विश्वविद्यालय को दर्जा दिया गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् 1947 में काशी विद्यापीठ, वाराणसी तथा कालेज ऑफ सोशल सर्विस, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद की स्थापना हुई। 1948 में अमरीका की यंग वूमेन क्रिश्चियन असोसिएशन के विदेश अनुभाग की सहायता से उत्तरी यंग वूमेन्स क्रिश्चियन असोसिएशन के तत्वाधान के अंतर्गत दिल्ली स्कूल ऑफ सोशल वर्क की स्थापना हुई। यह स्नातक स्तर की उपाधि प्रदान करने वाले दो वर्ष की स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम को प्रदान करने वाला अग्रणी संस्थान है। 1949 में दिल्ली विश्वविद्यालय ने इसे संबद्धता प्रदान की तथा 1961 में इस विश्वविद्यालय ने इस स्कूल के प्रबन्धन को अपने हाथों में ले लिया। विश्वविद्यालय के एक भाग के रूप में पहला स्कूल 1949–50 में बड़ौदा में स्थापित किया गया तथा लखनऊ विश्वविद्यालय के समाज कार्य विभाग की स्थापना किया गया तथा लखनऊ विश्वविद्यालय के समाज कार्य विभाग की स्थापना 1949 में हुई। इसके पश्चात्, मद्रास स्कूल ऑफ सोशल वर्क (1952) एवं अन्य संस्थान पूरे देश की लम्बाई एवं चौड़ाई के अन्तर्गत स्थापित किए गए।

उदीयमान सामाजिक परिदृश्य ने इस बात की आवश्यकता को जन्म दिया कि सामाजिक परिवर्तन हेतु तथा कल्याण तथा संकट के समय हस्तक्षेप करने के लिए कार्यक्रमों एवं सेवाओं का प्रबन्ध किया जाए, विशेषीकृत ज्ञान एवं निपुणताओं के साथ व्यावसायिक रूप से योग्यता वाली मानवशक्ति की आवश्यकता है। इस प्रकार से, इस प्रक्रिया में भाग लेने हेतु समाज के सीमान्त वर्गों को सक्षम बनाने के लिए विकासात्मक पहलें, समाज सुधार एवं सामाजिक क्रिया की प्रभावपूर्णता एवं कार्यकुशलता, सरकारी एवं गैर–सरकारी दोनों प्रकार के विकासशील एवं कल्याण संस्थाओं में मानव संसाधन की गुणवत्ता से आवश्यक रूप से जुड़ी हुई होती है।

विगत छह दशकों के दौरान, विश्वविद्यालय व्यवस्था में व्यावसायिक समाज कार्य पाठ्यक्रमों को उपलब्ध कराने वाले शैक्षणिक संस्थानों की संख्या में काफी बढ़ोत्तरी हुई है। वर्तमान समय में व्यावसायिक प्रशिक्षण संस्थाओं की संख्या सौ से अधिक है, इनमें से कुछ समाज कार्य में स्नातक उपाधि, कुछ स्नातकोत्तर उपाधि तथा कुछ सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम उपलब्ध कराते हैं। कुछ पी० एच० डी० कार्यक्रम भी चलाते हैं।

आँकड़े प्रदर्शित करते है कि महाराष्ट्र राज्य सबसे आगे है जहाँ पर लगभग 50 ऐसे संस्थान स्थापित किए गए है । इस प्रकार, जहाँ महाराष्ट्र, तमिलनाडु एवं कर्नाटक संस्थाओं के एक गुच्छ से युक्त है, वहीं पर अभी तक दक्षिण एव उत्तर के दूरस्थ क्षेत्र जैसे पंजाब, जम्मू एवं काश्मीर, हिमालय तथा उत्तर पूर्वी पर्वतीय राज्यों मे अभी भी कोई समाज कार्य शिक्षा देने वाला सस्थान नहीं है इससे स्पष्ट है कि समाज कार्य शिक्षा देने वाली संस्थाओं का क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व की प्रकृति तिरछी है तथा इस बात को सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि भौगोलिक विभाजन की दृष्टि से समाज कार्य का क्रमबद्ध विकास किया जाए।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा 1960 में समाज कार्य शिक्षा के लिए प्रथम पुनरावलोकन समिति तथा समाज कार्य शिक्षा के मानकों की अभिवृद्धि एवं अनुरक्षण हेतु समाज कार्य शिक्षा के समन्वय, प्रशिक्षण, अनुसन्धान एवं अभ्यास के लिए 1975 में द्वितीय पुनरावलोकन समिति की नियुक्ति की गई। यह प्रतिवेदन इस विचार के परिप्रेक्ष्य में तैयार किया गया कि किसी भी व्यवसाय को अपने अतीत का पुनरावलोकन करना चाहिए तथा भविष्य को देखना चाहिए ताकि वह उसके सदस्य अभ्यास हेतु साधन सम्पन्न हो सकें। भारत वर्ष में समाज कार्य शिक्षा की बढ़ोत्तरी एवं विकास हेतु समाज कार्य शिक्षा की राष्ट्रीय परिषद् की स्थापना किया जाना एक महत्वपूर्ण निर्णय था। सन् 2001 की समाज कार्य शिक्षा की तृतीय पुनरावलोकन समिति ने इस बात पर बल दिया कि समाज कार्य शिक्षा को उन सामाजिक वास्तविकताओं से जोड़ा जाए जहाँ पर इस व्यवसाय का अभ्यास किया जाता है। इसने

यह वकालत कि समाज कार्य के पाठ्यक्रम को चार सेटों एवं प्रभाव क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है। चार प्रभाव क्षेत्रों के नाम है: कोर प्रभाव क्षेत्र, सहायक प्रभाव क्षेत्र, अन्तर्विषयक प्रभाव क्षेत्र तथा चुनाव करने वाला प्रभाव क्षेत्र। कोर प्रभाव क्षेत्र के अंतर्गत दर्शन, विचारधारा, मूल्य, नीतिशास्त्र, सिद्धान्त एवं अवधारणायें सम्मिलित है। सहायक प्रभावक्षेत्र कोर प्रभाव क्षेत्र को सहायता देने के लिए ज्ञान एवं कुशलतायें उपलब्ध कराता है। अन्तर्विषयक प्रभाव क्षेत्र के अन्तर्गत समाज कार्य व्यवसाय से संबंधित अन्य विषयों से लिए गए सिद्धान्त एवं अवधारणायें आती है। चुने जाने योग्य प्रभाव क्षेत्र के अंतर्गत विकल्पीय पाठ्यक्रम आते हैं। इस समिति ने अभ्यास को सीखने हेतु सीखने वालों के अवसरों को मतहव दिए जाने पर बल दिया। इसके अतिरिक्त, इसने विद्यार्थी के सम्पूर्ण विकास हेतु अध्यापन के विभिन्न ढंगों के प्रयोग की भी सस्तुति की। असोसिएशन ऑफ स्कूल्स ऑफ सोशलवर्क इन इण्डिया, प्रशिक्षण संस्थाओं के मानक निर्धारण का एक स्वैच्छिक संगठन है तथा यह समाज कार्य शिक्षकों के लिए प्रवक्ता का कार्य करती है। 1959 में स्थापित यह समाज कार्य शिक्षा के समस्त मामलों हेतु एक राष्ट्रीय मंच है। इसने कर्मचारियों के विकास हेतु संगोष्ठियों को संगठित करने, पाठ्यक्रम एवं इसकी विषयवस्तु को लगातार पुनरावलोकित करने, समाज कार्य शिक्षा से संबंधित अनुसंधान करने, अध्यापन सामग्री तैयार करने इत्यादि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसने सदैव अध्यापन मानकों को स्थापित करने का प्रयास किया है लेकिन इसकी स्वैच्छिक प्रकृति होने के कारण इसे लागू करने में बहुत सफल नहीं रही है।

इन्दिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय दूर शिक्षा की एक अग्रणी संस्था है, जिसने समाजकार्य शिक्षा उपलब्ध कराने की पहल की है। क्षेत्रीय कार्य एवं कक्षा कक्ष अध्यापन दोनों की निरन्तर शिक्षा के माडल को दोहराते हुए इसने पढ़ने वाले के परिप्रेक्ष्य से पाठ्यक्रम को विकसित किया है। सेवा उपलब्ध कराने एवं प्राप्त करने के उद्देश्य से व्यवसाय द्वारा निर्धारित लक्ष्यों को अन्तिम रूप से प्राप्त करने वाली क्रियाओं एवं कार्यों को करना, सक्षम व्यावसायिक मानवशक्ति को विकसित करना इसका उद्देश्य है। इस क्षेत्र में दूरस्थ शिक्षा उपलब्ध कराने का यह नवीन कदम समाज कार्य की व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण के इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण कदम है। समाज कार्य शिक्षा की अनेक कमियों दूर करने के लिए अनेक औचित्यपूर्ण कार्य किए गए हैं, उदाहरणार्थ शैक्षणिक मानकों को बनाए रखने के लिए उत्तरदायी राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं एवं संगठनों के साथ पाठ्यक्रम का निर्माण करना, अध्यापन में सहायता देने वाले संयंत्रों एवं क्षेत्रीय तथा स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए महत्वपूर्ण पाठ्यक्रम बनाना, तथा व्यक्तियों के साथ काम करने के एकीकृत ज्ञान एवं कुशलताओं को विकसित करना।

समाज कार्य शिक्षा के विकास के विषय से संबंधित क्षेत्र

इस चर्चा की समाप्ति के अवसर पर, हमने समाज कार्य शिक्षा के विकास हेतु विषय से सम्बन्धित क्षेत्रों को संक्षिप्त रूप से वर्णित करने के प्रयास किए हैं। इसकी मुख्य सम्बद्धता इस बात से है कि भौगोलिक वितरण एवं मान्यता प्राप्त परिषदों तथा विश्वविद्यालयों से सम्बद्धता के रूप में समाज कार्य शिक्षा का क्रमबद्ध विकास सुनिश्चित करना है। देश में नौकरी के कार्यों से सम्बन्धित विभिन्न समाप्ति बिन्दुओं से युक्त श्र खलाबद्ध शैक्षणिक कार्यक्रम के विकास के लिए एक पूर्ण संरचना उपलब्ध कराने के लिए स्थिर प्रयास किए जाने चाहिए तथा प्रत्येक अवस्था को दूसरी अवस्था से सम्बन्धित होना चाहिए। सामाजिक वास्तविकताओं के लिए वांछित पाठ्यक्रम को विकसित करने हेतु लगातार प्रयास किए जाने चाहिए। इनके साथ–साथ, अन्य प्रभाव सम्बद्धतायें समस्त स्तरों के लिए समाज कार्य शिक्षा हेतु अध्यापन/अनुसन्धान सामग्री को विकसित करना तथा अनुसन्धान विशेषज्ञता को विकसित करने एवं अनुसंधान परियोजनाओं के लिए धन जुटाने इत्यादि से संबंधित है। इच्छित दिशा में इस प्रगति के लिए परिवर्तन, विकास तथा प्रगति में स्थिरता लाने हेत संगठनात्मक संरचनायें आवश्यक हैं। उदाहरण के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अन्य विद्याविशेषों के अनुरूप समाज कार्य शिक्षा से संबंधित पैनल रखता है। इसके अतिरिक्त, भारत सरकार के समाज कल्याण विभाग ने प्लानिंग, रिसर्च, इवेलुएशन ऐण्ड मानीटरिंग के लिए अलग से अनुभाग की स्थापना की है जिसके व्यावसायिक अभ्यासों के बढ़ाने में दूरगामी परिणाम प्राप्त हुए हैं। इसके योजना आयोग के साथ अनुसन्धान अध्ययनों एवं सांख्यिकी की गणना के कार्य ने आँकड़ों तक की पहुँच को सुगम बनाया है।

सारांश

जनसंख्या के सीमान्त वर्गों की दशाओं में क्रमबद्ध एवं संगठित साधनों के साथ समाज कार्य व्यवसाय स्पष्ट रूप से एक नवीन व्यवसाय है। फिर भी, इसके मूल्यों, सिद्धान्तों एवं दर्शन को अच्छी तरह से जानने हेतु व्यवसाय के विद्यार्थियों द्वारा समाज कार्य की अवधारणा एवं इसके विकास के तरीके को समझने का प्रयास किया जाना चाहिए।

भारतीय समाज एवं संस्कृति के समाज कल्याण आधार की ओर दान एवं धर्म निर्देश देने वाले कारक थे। प्राचीन भारतीय काल में भिक्षा एवं दान प्रिय मूल्यों के रूप में प्रशंसित थे जोकि विभिन्न शास्त्रों, उपनिषदों इत्यादि से प्रदर्शित होता है। समाज का कृषि संरचना में रूपान्तरण ने दान को एक मूल्य के रूप में प्रतिस्थापित किया। इस काल में एक विस्त त समाज कल्याण नीति को स्थापित करने के प्रारम्भिक प्रयासों को देखा गया। इस समान दृष्टिकोण ने मध्यकाल के दौरान समाज कल्याण क्रियाओं के लिए प्रेरित किया। फिर भी,

कर लगाने, शान्ति को बनाए रखने, बाहरी शक्तियों से संरक्षण देने, न्याय प्रदान करने जैसे कर्तव्यों, जोकि राजा के लिए स्पष्ट रूप से निर्धारित थे, के अतिरिक्त जनता के सामान्य कल्याण के लिए शासक ने बहुत कम कार्य किए। फिर भी, मुसलमान शासकों जैसे हुमायूँ, अकबर ने सतीप्रथा, दासता इत्यादि जैसी सामाजिक बुराइयों से निपटने के लिए साहसपूर्ण कदम उठाए। आधुनिक काल के दौरान सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व्यवस्था में हुए परिवर्तनों के कारण परिवार, नातेदारी, शिक्षा, राजनीति इत्यादि जैसी समाज की विभिन्न संस्थाओं एवं संरचनाओं में समान परिवर्तन देखने को मिले। सामाजिक धार्मिक सुधार आन्दोलनों को राम मोहन राय से महान ऊर्जा मिली जिन्हें इन आन्दोलनों का पिता समझा जाता है। यह आन्दोलन पश्चिम में शिक्षित मध्यम वर्ग के व्यक्तियों तक सीमित था जिसने गाँधी जी को परिदृश्य पर उतारा। राजनीतिक एवं समाज सुधार आन्दोलन को जोड़ने के उनके दर्शन के कारण से बहुत बड़े जन आन्दोलन को भारतवर्ष में देखा गया। उनका योगदान केवल अभ्यास कर्ताओं एवं नीतियोजना निर्माताओं द्वारा समाज कल्याण अभिगम को केवल प्रभावित करने तक सीमित नहीं था बल्कि समाज कार्य के व्यवसाय को आगे बढ़ाने की आवश्यकता की पूर्ति करने से भी संबंधित था। भारतवर्ष में 1936 से समाज कार्य शिक्षण एवं प्रशिक्षण की दिशा में प्रगति हुई जबकि बम्बई में समाज कार्य के पहले स्कूल सर दोरा व जी टाटा ग्रेजुएट स्कूल ऑफ सोशल वर्क की स्थापना हुई। इसके पश्चात् देश के विभिन्न भागों में समाज कार्य के अनेक विद्यालयों एवं संस्थानों की स्थापना की गई।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

मदन, जी० आर० (1966), इण्डियन सोशल प्राबलम्स: सोशल डिसआर्गनाइजेशन ऐण्ड रिकान्ट्रक्शन, अलाइड पब्लिशर्स, बम्बई।

गोरे, एम० एस० (1965), सोशल वर्क ऐण्ड सोशल वर्क एजूकेशन, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई।

बाडिया, ए० आर० (एडिटेड) (1961), हिस्ट्री ऐण्ड फिलास्फी ऑफ सोशल वर्क इन इण्डिया, अलाइड पब्लिशर्स।

यूनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन (1972), रिव्यू ऑफ सोशल वर्क एजूकेशन इन इण्डिया

पाठक, एस० एच० (1981), सोशल वैलफेयर, एन इव्यूल्यूशनरी ऐण्ड डेवलेपमेण्ट पर्स्पेक्टिवस, मैक्मिलन पब्लिकेशन्स, दिल्ली।

दिवाकर, वी० डी० (एडिटेड)(1991), सोशल रिफार्म मूवमेन्ट्स इन इण्डिया : ए हिस्ट्रारिकल परस्पेक्टिव, पापुलर प्रकाशन पब्लिकेशन, बम्बई।